ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

श्रमण परम्परा मे धर्म ध्यान का विष्लेशण

प्रोफेसर डॉ. बी.एल. सेठी पीएच.डी., डी.लिट्. इतिहास विभाग श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, चुड़ैला, झुन्झुनूं (राज.)

सुभाष चन्द रिसर्च स्कोलर

धर्म सहित ध्यान को धर्मध्यान कहते हैं। धर्म माने वास्तु का स्वभाव और ध्यान माने एकाग्रता, वस्तुस्वभाव की ओर एकाग्रता ही धर्मध्यान है। यह धर्मध्यान[1] भी चार प्रकार का है –

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय।

आज्ञाविचय – आगम की आज्ञा के अनुसार श्रद्धापूर्वक गहन विचार करना आज्ञाविचय नामक धर्मध्यान है। बहुत से विशय ऐसे हैं, जिन्हें सीधे जानना संभव नहीं है। जैसे जमीकंद में अनंत जीव हैं – इस बात का निर्णय जिनागम के आधार से ही हो सकता है, क्योंकि जीव इतने सूक्ष्य है कि उन्हें इन्द्रियप्रत्यक्ष से जानना संभव नहीं है।

अपायविचय – मिथ्यादर्शन – ज्ञान चारित्र संसार के कारण होने से मुक्तिमार्ग के अपाय (विरोधी) हैं, अज्ञानी जीव इस अपाय से कैसे बचें – इस बात का प्रबल चिन्तन अपायविचय नामक धर्मध्यान है।

इस धर्मध्यान का दूसरा नाम उपायविचय भी है, क्योंकि इसमें मुक्ति प्राप्त करने के उपायक का भी गंभीर चिन्तन होता है, मुक्ति के उपायरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का विचार होता है। उक्त के संदर्भ में किया गया कहन तत्वविचार ही अपायविचय या उपायविचय नामक धर्मध्यान है।

विपाकविचय– कर्मो के विपाक के संदर्भ में विचार करना विपाकविचय नामक धर्मध्यान है। कौन से कर्म का विपाक या उदय कब होता है, उसका क्यो फल है आदि सम्पूर्ण कर्मविशयक गहरा चिन्तन इस विपाकविचय नामक धर्मध्यान में आता है।

संस्थानविचय –जिनागम में प्रतिपादित लोक का क्या आकार है? ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक की रचना आदि जैनधर्म संबंधी भूगोल का विचार संस्थानविचय नामक धर्मध्यान है।

जिनागम के आधार पर प्राप्त जानकारी के अनुसार उक्त सभी प्रकार के चिन्तन विकल्पात्मक होने से व्यवहार धर्मध्यान है। निश्चय धर्मध्यान तो देशनालब्धिपूर्वक जाने हुए निज भगवान आत्मा का अवलोकन करना, जानना और उसी में उपयोग को एकाग्र करना है।विषेश विचार करने के बात यह है कि भाुक्लध्यान पंचमकाल में किसी को भी तथा गृहस्थों को चौथे काल में भी नही होता और आर्तध्यान व रौद्रध्यान करने योग्य नहीं हैं। अब बचा मात्र धर्मध्यान, जो इस पंचमकाल में ज्ञानी सम्यग्दृश्टि गृहस्थों के भी संभव है, मिथ्यादृश्टियों का धर्मध्यान नहीं होता।आज जब भी ध्यान की चर्चा चलती है, तब उक्त आज्ञाविचय आदि चार प्रकार के धर्मध्यानों की तो बात ही नहीं होती तथा यह धर्म ध्यान सम्यग्दृश्टियों को ही होता है – इस बात भी ध्यान नहीं दिया जाता।

उक्त चारों प्रकार के धर्मध्यानों की विशयवस्तु की ओर ध्यान दे ंतो एक बात स्पश्ट होती है कि जिनागम के अध्ययन बिना धर्मध्यान संभव ही नहीं है, क्योंकि जिनाज्ञा जाने बिना आज्ञाविचय धर्मध्यान कैसे होगा? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मुक्तिमार्ग को समझे बिना अपायविचय धर्मध्यान संभव नहीं है। इसी प्रकार जिसमें कर्मसिद्धान्त और त्रिलोक की रचना का निरूपण है, उस करणानुयोग के ग्रन्थों के अभ्यास बिना विपाकविचय और संस्थानविचय धर्मध्यान कैसे होंगे?क्या ध्यान का अभ्यास करानेवाले जिनागम की उक्त विशयवस्तु से परिचित हैं? यदि है तो भी क्या वे ध्यानार्थियों को उक्त विशयों का अध्ययन कराते हैं ? नही ंतो फिर यह कैसा धर्मध्यान है?

यदि निश्चय धर्मध्यान की बात करें तो निश्चय धर्मध्यान में जिस भगवान आत्मा का ध्यान किया जाता है उस भगवान आत्मा के स्वरूप को जानना आव यक है। आचार्य कुन्दकुन्दकृत समयसार में भारीरादि परपदार्थो से भिन्न, अपने में उत्पन्न होने वाले रागादि विकारीभावों से अन्य, विकारी –अविकारी समस्त पर्यायों से पार और गुणभेद से भी भिन्न जिस आत्मा की चर्चा है निश्चय धर्मध्यान और भाुक्लध्यान का ध्येय तो वह भगवान आत्मा है। ध्यान करने की प्रेरणा देने के पहिले क्या उस भगवान आत्मा का स्वरूप समझना –समझाना आवश्यक नहीं है?

जिस ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जो साक्षात् धर्मस्वरूप है उस ध्यान को समझने–समझाने के लिये ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यान का फल जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।ध्यान तो चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के जीव हैं। ध्येय उक्त ज्ञानानन्दस्वभावी त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा है। ध्यान उक्त त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा में उपयोग का स्थिर होना है और ध्यान का फल अतीन्द्रियानन्द की प्राप्ति है, मोह–राग–द्वेश से मुक्त होना है।[2]

आज होने वाले ध्यान में ये सब बातें दूर–दूर तक भी दिखाई नहीं देतीं।उक्त चार बातों में सबसे पहले सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात ध्याता और ध्येय को समझना है। यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि ध्याता सम्यग्दृश्टि जीव ही होते हैं। वर्णादि और रागादि से भिन्न जिस निजरूप भगवान आत्मा में आत्मानुभूतिपूर्वक अपनापन स्थापित होने का नाम सम्यग्दर्शन है, वही निजरूप भगवान आत्मा ध्यान का ध्येय होता है। अतः यह सुनिश्चित ही है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और ध्यान करने के लिए उक्त श्रद्धेय व ध्येय आत्मा को जानना अत्यन्त आव यक है।इसका भाव यह है कि उक्त भगवान आत्मा न केवल श्रद्धेय और ध्येय ही है, अपितु परमज्ञेय भी वही है, क्योंकि सम्यग्दर्शन[3] – ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति उक्त भगवान आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान (चारित्र) से ही संभव है।

अतः कक्षायें या शिविर तो उस भगवान आत्मा को सही रूप में समझने–समझाने के लिए लगाना आवश्यक है, न कि ध्यान सिखाने के लिए, ध्यान का अभ्यास कराने के लिए। सम्यग्दर्शन के बिना ध्यान कैसे होगा और ध्येय का सम्यक् निर्णय हुए बिना ध्यान किसका होगा?

ध्यान करने का अभ्यास करने की आव यकता नहीं है क्योकि ध्यान तो हम निरन्तर करते ही हैं। पत्नी पति का और पति पत्नी का ध्यान रखते ही है। डॉक्टर मरीजो का, दुकानदार ग्राहकों का, यहाँ तक कि मजदूर अपने काम का ध्यान रखते ही हैं। यदि ड्राइवर गाड़ी चलाते समय ध्यान न रखे तो क्यो होगा – इसकी कल्पना की जा सकती है।

अरे, भाई! ध्यान के बिना तो एक कप चाय भी नही बन सकती। यदि ध्यान नहीं रखा जायेगा तो चूले पर चढा दूध उबल सकता है, तवे पर पड़ी रोटी जल सकती है। कहाँ तक कहें ध्यान के बिना तो इस जगत में कोई भी काम नहीं होता। यही कारण है सभी लोग अपने–अपने काम का ध्यान रखते ही है। अतः सभी को ध्यान रखने का, ध्यान करने का अभ्यास तो है ही। आव यकता ध्यान के अभ्यास करने की नहीं, ध्येय को बदलने की है, निज आत्मरूप ध्येय को समझने की है।ध्येय का निर्णय होने पर, उसमें अपनापन आ जाने पर, उसकी तीव्रतम रूचि जाग्रत हो जाने पर, उसे पाने की तड़प उत्पन्न हो जाने पर, उसका ध्यान तो सहज ही होता है, उस पर से ध्यान हटता ही नहीं है। इसीलिए तो कहा गया है कि ध्यान यत्नसाध्य नहीं, सहजसाध्य है।[4]

एक महाविद्यालय में छात्र और छात्राएँ साथ–साथ अध्ययन करते थे। एक छात्र और एक छात्रा में परस्पर स्नेह हो गया। समान लोगों का सतत् सम्मिलन एक –दूसरे को आकर्शित करता ही है। परिचय को प्रेम में बदलते देर नहीं लगती। हुआ भी ऐसा ही। उन दोनों ने जीवन में पति –पत्नी के रूप में साथ–साथ रहने का संकल्प कर लिया, कसमें खा ली कि भाादी करेंगे तो आपस में ही करेंगे, अन्यथा ..... । कसमें तो खा लीं, पर अपने इस संकल्प को अपने–अपने माँ–बाप को बताने को साहस न जुटा सके और दिन–रात यों ही बीतने लगे।

यद्यपि इस बात की चर्चा उन्होने किसी से भी नही की, तथापि **'चंचल नैन छुपें न छुपाने'** की नीति के अनुसार बात छुपी न रह सकी, उनके माँ–बाप तक भी यह बात पहुँच ही गई।

माँ–बाप समझदार थे। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि हमने कुछ किया तो होने –जाने वाला तो कुछ है नहीं हाँ, हम खलनायक अवश्य बन जायेंगें। न केवल इसलिए, अपितु जोड़ा भी तो श्रेश्ठ था अतः उनके चित्त को भी यहबात सहज स्वीकृत हो गई।[5]

लड़के के पिता ने लड़के को बुलाकर कहा– "सुनो, जरा ध्यान से सुनो, हमने तुम्हारी भाादी करेन का निर्णय लिया है। हम चाहते हैं कि इसी वर्श तुम्हारी भाादी हो जावे।"

पिता से भाादी के प्रस्ताव की बात सुनकर भी पुत्र अपने हृदय की बात न कह कता और कहने लगा – "अभी मैंने भाादी के बारे में सोचा नहीं है। अभी तो पढाई पूरी

करनी है, उसके बाद काम पर भी तो लगना है। उसके बाद .....।"

वह अपनी बात पूरी ही न कर पाया कि पिता ने कहा – "हमने अमुक व्यक्ति की अमुक लड़की से तुम्हारी भादी करेन की बात सोची है।"

जिसे वह जी–जान से चाहता था, पिता के मुख सेउसी का नाम सुनकर वह हक्का–बक्का रह गया, उसके मुख से कुछ भी न निकला।

पिता ने अपनी बात को आगे बढाते हुए कहा – "मै चाहता था कि तुम भी उसे देख लो, मिल लो, मुझे वि वास है, तुम्हें वह पसन्द आयेगी।"

अभी –अभी उसने भादी करने से इन्कार किया था – यह बात न जाने कहाँ चली गई और वह अत्यन्त विनम्रता से कहने लगा।

"जब आपने देख लिया है तो मुझे क्यो देखना ? आपकी अनुभवी दृश्टि के सामने मै समझता भी क्या हूँ ? आप जो कुछ भी करेंगे, वह ठीक ही होगा।"

वह अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि पिता जी कहने लगें – "ये तो ठीक है, पर एक निगाह तुम भी डाल लेते तो ठीक रहता।....."

"नही, नहीं मुझे कुछ भी नहीं देखना है" जब पुत्र ने यह कहा तो पिताजी कहने लगे –

"सुनो, अभी दो – चार दिन में ही सगाई पक्की कर देंगे।"

"ठीक है।"

"ठीक है नहीं, पूरी बात सुनो। सगाई तो अभी कर देंगे, पर भादी चार माह बाद मई –जून में ही हो पायेगी।"

"ठीक है, जब आप ठीक समझें"

"पर, हमारी एक भार्त है कि जबतक भादी न हो, तबतक तुम दोनों एक –दूसरे के घर के चक्कर नहीं लगावोगे।"

"ठीक है।"

"और भी सुनो, चिट्ठी–पत्री भी नहीं चलेगी।"

"ठीक है, ठीक है, कोई बात नहीं।"

"एक बात और भी है कि तबतक तुम एक–दूसरे के बारे मे सोचोगे भी नहीं एक –दूसरे को ध्यान में भी नहीं लाओगे, क्योंकि यदि तुम्हारा चित्त एक –दूसरे में उलझ कर रह गया तो पढाई–लिखाई चौपट हो जायेगी।"

व्यग्र होते हुये लड़का बोला – "जो भी हो, पर आपकी यह बात नहीं मानी जा सकती।"

"क्योंकि यह बात हमारे साथ में नही है। जिससे अपनापन हो जाता है, स्नेह हो जाता है, वात्सल्य हो जाता है, जिसके प्रति रूचि जाग्रत हो जाती है, उसका ध्यान आये बिना नही रहता। प्रयत्न करने पर भी यह संभव नहीं है कि उसका ध्या नही न आवें।"

उक्त कथा का सार मात्र इतना ही है कि जिसका परिचय हो, जिससे अपनापन हो, जिससे राग हो गया हो, स्नेह हो गया हो, जो अपना सर्वस्व लगने लगे, उसके प्रति हो सर्वस्व समर्पण हो ही जाता है, हो ही जाना चाहिए, उसका ध्यान करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसके लिए किसी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसका प्रशिक्षण भी नहीं लेना पड़ता सबकुछ सहज ही होता है।

अरे भाई! एक बार निज भगवान आत्मा को जानिये तो सही, पहिचानिये तो सही, उसमें अपनापन तो स्थापित कीजिए, उसकी रूचि तो जगाइये, फिर देखिये कि उसका ध्यान होता है कि नहीं? इसलिए मैं कहता हूँ कि ध्यान की कक्षायें लगाने की आवश्यकता नहीं है, उसका ध्यान करने की प्रेरणा देने की भी जरूरत नहीं है। आवश्यकता मात्र अपने आत्मा को सही रूप में जानने की है, पहिचानने की है। अतः कक्षायें और शिविर आत्मा को समझने–समझाने के लिए ही लगाये जाने चाहिए।[5]

धर्मध्यान एक सहज प्रक्रिया है, जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर सहज भाव से प्रतिफलित होती है। सामायिक ध्यान का ही एक रूप है, जो दिगम्बर परम्परा में प्रचलित भी है। साधु–सन्तों के साथ व्रती – श्रावक भी प्रतिदिन सामायिक करते ही है।

दूसरी प्रतिमा में होने वाले बारह व्रतों में सामायिक नाम का एक व्रत है। तीसरी प्रतिमा का तो नाम ही सामायिक प्रतिमा है। इस प्रकार हमारे यहाँ सामायिक के रूप में ध्यान को समुचित स्थान प्राप्त है ही।

व्यवहार धर्मध्यान चिन्तनात्मक होता है, विकल्पात्मक होता है और निश्चय धर्मध्यान चिन्तन के निरोधरूप निर्विकल्पक होता है। वस्तुतः बात यह है कि चिन्तन ध्यान का प्रारंभिकरूप है। रूचि ध्यान की नियामक होने से चिन्तन की भी नियामक होती है। जिसकी जिसे यचि होती है, पहले उसके बारे में विकल्पात्मक चिन्तन चलता है, फिर रूचि की तीव्रता में विकल्पात्मक चिन्तन निर्विकल्पक ध्यान में परिवर्तित हो जाता है। यह एक सहज प्रक्रिया है।

अनुप्रेक्षा (चिन्तन) और ध्यान में अन्तर स्पश्ट करते हुये आचार्य अकलंकदेव लिखते हैं:–

अनुप्रेक्षाओं का धर्मध्यान में अन्तर्भाव हो जाने से, उनका पृथक कथन करना उचित नहीं है – यदि कोई ऐसा कहे तो उसका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि अनुप्रेक्षाएँ ज्ञान प्रवृत्तिविकल्परूप हैं।[6]

अनित्यादिश्विशयों का चिन्तन जब ज्ञानरूप होता है, तब वह अनुप्रेक्षा कहलाता है और जब अनित्यादि विशयों में चित्त एकाग्र होता है, तब धर्मध्यान नाम पाता है।

यदि हम उक्त कथन पर गंभीरता से विचार करे तो एक बात अत्यन्त स्पश्ट है कि निर्विकल्पक धर्मध्यान होने के पहले होनेवाली ज्ञानप्रवृत्ति विकल्परूप अनुप्रेक्षा में भारीरादि संयोगों की अनित्यता, अशरणता, असारता, भिन्नता और अशुचिता आदि का चिन्तन होता है और जब विकल्परूप चिन्तन का निरोध होकर उसी विशयवस्तु में चित्त निर्विकल्परूप से एकाग्र हो जाता है तो वह धर्म ध्यान नाम पाता है।

तात्पर्य यह है कि धर्मध्यान के पहले और धर्मध्यान में भी देहादि से विरक्ति के लिए उसकी अनित्यता, अ रणता, असारता और अशुचिता आदि का चिन्तन तो हो सकता है, पर भारीरादि के पोशण का विकल्प, चिन्तन, ध्यान तो महा अनर्थ है, धर्मध्यान के विरूद्ध प्रवृत्ति है।ध्यान के नाम पर आज यही सबकुछ हो रहा है। ध्यान के नाम पर आत्मकल्याण और आत्मज्ञान व आत्मध्यान में लगने वाली बुद्धि, भाक्ति, साधन, समय – सभी कुछ असली धर्म के, ध्यान के, धर्मध्यान के विरोध में लग रहे हैं। क्या यह एक विचारणीय स्थिति नहीं है ?

सन्दर्भ सूची

1. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 9, सूत्र 20 से 25
2. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 9, सूत्र 32 से 37
3. रत्नकरण्डश्रावकाचार, छन्द 42
4. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 9, सूत्र 28
5. रत्नकरण्डश्रावकाचार, छन्द 29
6. आचार्य पूज्यपाद : इश्टोपदेश, छन्द 53